कठोपनिषद् में योग

प्रो. कृष्णकान्त शर्मा

महर्षि पतञ्जलि ने चित्तवृत्तियों के निरोध को योग कहा है योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः (योगसूत्र 1.2)। चित्त की एकाग्रता के बिना बाह्य विषयों में भटकते हुए चित्त के द्वारा स्थूल वस्तुओं की भी ठीक-ठीक ज्ञान संभव नहीं है, सूक्ष्म वस्तुओं का ज्ञान कैसे हो सकता है। मनुष्य जीवन का चरम लक्ष्य त्रिविध दुःखों की शाश्वतिक निवृत्ति, जिसे मुक्ति, मोक्ष, कैवल्य, अपवर्ग, निःश्रेयस आदि पदों से अभिहित किया गया है, योग के विना संभव नहीं है। अतएव महाभारत में शुकदेव ने कहा है—**'न तु योगमृते प्राप्तुं शक्या सा परमा गतिः'**। **कठोपनिषद्** में नचिकेता ने तृतीय वर के रूप में जिस आत्मरहस्य की जिज्ञासा की। उसकी परम सूक्ष्मता को स्वयं **कठोपनिषद्** बतलाती है—

देवैरत्रापि विचिकित्सितं पुरा हि सुविज्ञेयमणुरेष धर्मः। 1.1.21

अर्थात् आत्माख्य सूक्ष्म धर्म सुगमता से जानने योग्य नहीं है। पुनः इसकी सूक्ष्मता को और अधिक स्पष्ट करती हुई **कठोपनिषद्** कहती है—

न नरेणावरेण प्रोक्त एष सुविज्ञेयो बहुधा चिन्त्यमानः।
अनन्यप्रोक्ते गतिरत्र नास्ति अणीयान्ह्यतर्क्यमणुप्रमाणात्॥ 1.2.8

अर्थात् साधारण बुद्धि वाले मनुष्य द्वारा कहे जाने पर यह आत्मा अच्छी तरह नहीं जाना जा सकता, क्योंकि इसके विषय में वादियों ने अस्ति-नास्ति, कर्ता-अकर्ता आदि अनेक प्रकार से चिन्तन किया है। अभेददर्शी आचार्य द्वारा उपदिष्ट इस आत्मा में कोई गति नहीं है। क्योंकि यह सूक्ष्म परिमाणवालों से भी सूक्ष्म और दुर्विज्ञेय है।

ऐसे सूक्ष्मातिसूक्ष्म दुर्विज्ञेय आत्मतत्त्व का अधिगम (ज्ञान) योग द्वारा ही सम्भव है, इसको स्वयं **कठोपनिषद्** बतलाती है—

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम्।
अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति॥ 1.2.12

अर्थात् अतिसूक्ष्म होने के कारण कठिनता से दीख पड़ने वाले, गूढस्थान में अनुप्रविष्ट, बुद्धि में स्थित, गहन स्थान में रहने वाले, उस पुरातन देव को अध्यात्मयोग की प्राप्ति द्वारा जानकर बुद्धिमान् पुरुष हर्ष शोक का परित्याग कर देता है। यह अध्यात्मयोग क्या है, इसे स्पष्ट करते हुए भगवान् शङ्कराचार्य कहते हैं—**'विषयेभ्यः प्रतिसंहृत्य चेतस आत्मनि समाधानम् अध्यात्मयोगः'** अर्थात् चित्त को विषयों से हटा कर आत्मा में लगा देना ही अध्यात्म योग है।

आगे **कठोपनिषद्** यह भी बतलाती है कि जो पापकर्मों से निवृत्त नहीं हुआ है, जिसकी इन्द्रियां शान्त नहीं हुई हैं, जो असमाहित अर्थात् विक्षिप्तचित्त है और जिसका चित्त शान्त नहीं है वह इस आत्मतत्त्व को प्रज्ञान के द्वारा प्राप्त नहीं कर सकता है—

नाविरतो दुश्चरितान्नाशान्तो नासमाहितः।
नाशान्तमानसो वापि प्रज्ञानेनैनमाप्नुयात्॥ 1.2.24

भगवान् शङ्कराचार्य एक कदम आगे बढ़कर इसकी व्याख्या करते हुए कहते हैं कि समाहित चित्त होने पर भी उस एकाग्रता के फल का इच्छुक होने के कारण जो अशान्तचित्त है, जिसका चित्त निरन्तर व्यापार करता रहता है वह

पुरुष भी इस आत्मा को केवल ब्रह्मविज्ञान से नहीं प्राप्त कर सकता है। जो पापकर्म और इन्द्रियों की चञ्चलता से हटा हुआ तथा समाहित चित्त और उस समाधान के फल से भी उपशान्तमना है, वही आचार्यवान् साधक प्रज्ञान के द्वारा आत्मा को प्राप्त कर सकता है।

असंयतेन्द्रिय व्यक्ति आत्मतत्त्व को जानने में क्यों असमर्थ है, इसे स्पष्ट करते हुए कठोपनिषद् ने इन्द्रियों को शरीररूपी रथ को खींचनेवाले घोड़े के रूप में कल्पित किया है। **इन्द्रियाणि हयान् आहुः** (1.3.4) जो बुद्धिरूप में सारथि सर्वदा अविवेकी एवं असंयतचित्त से युक्त होता है इन्द्रियां उसके वश में उसी प्रकार नहीं रहती है जिस प्रकार दुष्ट घोड़े सारथि के अधीन नहीं रहते—

यस्त्वविज्ञानवान्भवत्ययुक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाण्यवश्यानि दुष्टाश्वा इव सारथेः॥ 1.3.5

परन्तु जो बुद्धिरूपी सारथि कुशल और सर्वदा समाहित चित्त से युक्त होता है इन्द्रियां उसके अधीन उसी प्रकार रहती हैं जैसे एक सारथि के अधीन अच्छे घोड़े रहते हैं—

यस्तु विज्ञानवान् भवति युक्ते मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥ 1.3.6

असंयतचित्त संसार को ही बार बार प्राप्त करता है, वह अक्षर परमपद को प्राप्त नहीं कर सकता—

यस्त्वविज्ञानवान् भवत्यमनस्कः सदाशुचिः।
न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति॥ 1.3.7

योगयुक्त समाहितचित्त व्यक्ति ही उस परमपद को प्राप्त कर सकता है, जिसे प्राप्त कर पुनः संसार में नहीं लौटना पड़ता—

यस्तु विज्ञानवान् भवति समनस्कः सदा शुचिः।
स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद् भूयो न जायते॥ 1.3.8

आत्मा की सूक्ष्मबुद्धिग्राह्यता को व्यक्त करती हुई **कठोपनिषद्** कहती है—

एष सर्वेषु भूतेषु गुढोत्मा न प्रकाशते।
दृश्यते त्वग्र्यया बुद्ध्या सूक्ष्मया सूक्ष्मदर्शिभिः॥ 1.3.12

अर्थात् यह आत्मा समस्त प्राणियों में छिपा हुआ है। अविद्या से आच्छादित होने के कारण यह आत्मा प्रकाशित नहीं होता। किन्तु सूक्ष्मदर्शी पुरुषों द्वारा यह अपनी एकाग्र एवं सूक्ष्म बुद्धि से देखा जाता है।

अब प्रश्न उठता है कि बुद्धि का वह कौन सा प्रतिबन्ध है, जिसके कारण बुद्धि एकाग्र नहीं हो पाती और आत्मा का दर्शन नहीं हो पाता? इसके उत्तर में **कठोपनिषद्** कहती है कि स्वयंभू ने इन्द्रियों को बहिर्मुख करके हिंसित कर दिया है अर्थात् उसका हनन कर दिया है। इसी से जीव शब्दादि बाह्य विषयों को देखता रहता है, अन्तरात्मा को नहीं। जिसने अमरत्व की इच्छा करते हुए अपनी इन्द्रियों को रोक लिया है, ऐसा कोई धीर (योगयुक्त) पुरुष ही प्रत्यगात्मा को देख पाता है—

पराञ्चि खानि व्यतृणत्स्वयम्भूस्तस्मात् पराङ्पश्यन्ति नान्तरात्मन्।
कश्चिद्धीरः प्रत्यगात्मानमैक्षदावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन्॥ 2.1.1

यहाँ पर 'आवृत्तचक्षु' पद के द्वारा योग का ही निर्देश किया गया है। जिसने अपनी चक्षु और श्रोत्र आदि इन्द्रियों

को विषयों से व्यावृत्त कर लिया है अर्थात् जिसने चित्तवृत्तियों का निरोध कर लिया है, जो योगी है, ऐसा ही धीर पुरुष प्रत्यगात्मा का साक्षात्कार कर सकता है। इसी बात को चित्तवृत्तियों के निरुद्ध होने पर द्रष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित होता है—'**तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**' (योगसूत्र 1.3) सूत्र के द्वारा महर्षि पतञ्जलि ने स्पष्ट किया है।

जिस समय मन सहित पांचों ज्ञानेन्द्रियां स्थिर हो जाती हैं और बुद्धि भी चेष्टा नहीं करती उस अवस्था को परमगति कहते हैं—

यदा पञ्चवतिष्ठन्ते ज्ञानानि मनसा सह।
बुद्धिश्च न विचेष्टति तामाहुः परमां गतिम्।। 2.3.10

यही अवस्था योग की चरमावस्था है। योग की परिभाषा को सुस्पष्ट करती हुई **कठोपनिषद्** कहती है—

तां योगमिति मन्यन्ते स्थिरामिन्द्रियधारणाम्।
अप्रमत्तस्तदा भवति योगो हि प्रभवाप्ययौ।। 2.3.11

अर्थात् उस स्थिर इन्द्रियधारणा को ही योग कहते हैं। उस समय पुरुष प्रमादरहित हो जाता है, क्योंकि योग ही प्रभव और अप्यय यानी उत्पत्ति और लयरूप धर्म वाला है। भगवान् शङ्कराचार्य ने इस योग की अवस्था को वियोग कहा है, क्योंकि योगी की यह अवस्था सब प्रकार से अनर्थसंयोग की वियोगरूपा है। **श्रीमद्भगवद्गीता** ने भी '**तं विद्याद् दुःखसंयोगवियोगं दुःखसंज्ञितम्**' (6.23) के द्वारा यही आशय व्यक्त किया गया है।

इस प्रकार **कठोपनिषद्** ने योग को आत्मज्ञान के परम साधन के रूप में माना है। प्रथम वर के प्रसंग में भी 'शान्तसङ्कल्पः और सुमनाः' इन दो पदों के द्वारा योग की ओर ही संकेत किया है।

यदा सर्वे प्रमुच्यन्ते कामा येऽस्य हृदि श्रिताः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्यत्र ब्रह्म समश्नुते।।
यदा सर्वे प्रभिद्यन्ते हृदयस्येह ग्रन्थयः।
अथ मर्त्योऽमृतो भवत्येतावद्ध्यनुशासनम्।। 2.3.14-15

इन मंत्रों के द्वारा भी योग का निर्देश किया है।

* * *